संपादकीय

राष्ट्रीय-स्वदेशी चेतना का लोक-स्वर

लोक में जहाँ पुरातनता, प्राचीनता, परंपरागतता का सतत प्रवाह होता है, वहीं सामयिकता, नवीनता व नवागत व्यवहारों का भी निरंतर समावेश होता रहता है। विकसित और आगत विचारों व जीवन पद्धतियों को समेटकर प्रतिरूपित करने में लोक की मौखिक-वाचिक परंपरा ज्यादा सफल होती है। इसलिए विदेशी चाहे यवन हों, मुसलमान हों या फिर अंग्रेज, उनसे टकराने वाला समानांतर लोक साहित्य भी प्रादुर्भूत होते रहा है। उनके प्रति विद्रोह के विविध स्वर व सच्ची ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख लोकगीतों में है। ''इन लोकगीतों में स्थानीय इतिहास का पुट बड़ा गहरा है, जिनके उद्‌घाटन से विलुप्त अथवा विस्मृत इतिहास पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। बलिया जिले में हल्दी एक छोटा-सा गाँव है, जहाँ प्राचीन काल में क्षत्री राजा राज करते थे, जिनके वंशज आज भी मौजूद हैं। इन राजाओं की शाहाबाद जिले के डुमराँव के राजा से बड़ी तनातनी रहती थी। बलिया जिले के बेटिया गाँव में एक भूमिहार जमींदार पांडे हैं, जिनके पूर्वज बड़े सुप्रसिद्ध थे। उनमें से एक का नाम बहोरन पांडे था, जो डुमराँव के राजा के कारिन्दा या मैनेजर थे। एक बार डुमराँव राज्य का कोई अधिकारी हल्दी गाँव से होकर गुजर रहा था। उस समय उसने लड़कों को यह गाते सुना कि -

राजा भइले रजुली, बहोरन भइले धुनिया,
मारेले दलगंजन देव, दलकेले दुनिया।

अर्थात् डुमराँव का राजा रजुली अत्यंत नीच है, बेटिया के बहोरन पांडे धनिया जुलाहा हैं, परंतु हल्दी के राजा दलगंजन देव वीर हैं, जिनकी वीरता से दुनिया काँपती है। लड़कों के इस गीत का उस अधिकारी के हृदय पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वह उल्टे पाँव डुमराँव गया और राजा को सब समाचार सुनाया। राजा ने इस गीत को सुनकर उत्तेजित हो हल्दी पर चढ़ाई कर दी और वहाँ के राजा को परास्त कर दिया।'' (कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोक साहित्य, पृष्ठ-1) अस्तु, यह तो एक बानगी है। विदेशी गुलामी के दिनों में सर्वतोमुखी स्वदेशी की भावना का जागृत होना लाजिमी था। यह सनातन संस्कारों का भी अंग बड़ी सहजता से बनता जाता है। भोजपुरी संस्कारपरक लोकगीत में इसकी आवाज तो देखिए -

फिरि जाहु फिरि जाहु घरवा समधिया हो
मेर धिया रहिहैं कुँआरि।
बसन उतारि सब फेकहु बिदेसिया हो
मेर पूत रहिहैं उधार।
बसन सुदेसिया मँगाई पहिरइबैं हो
तब होइहैं धिया के बियाह।

स्वदेशी के प्रबल उछाह के साथ सूत कातने वाला चरखा जीवन का अंग बनता गया। हरियाणवी लोकगीत में चरखे को जीवन साथी कहा गया है -'तुम तो चाल्ले नौकरी, म्हारा कूण हवाल; यो चरखा म्हारे मन बस्या।' चरखे को लोकप्रिय बनाने में गांधी जी का सर्वाधिक योगदान था। यह स्वरोजगार, आत्मनिर्भरता, सादगी व सदाचार की निशानी बनती गई। इसे दुख-दारिद्र्य को दूर करने वाला कहा जाने लगा -'कह तारेअ गांधी जी कि चरखा चलावहु, एहि से हटिहे कलेसवा।' हरियाणवीं गीत में तो चरखे को लेकर पति-पत्नी का आपसी संवाद बड़ा मनमोहक व कारुणिक बन पड़ा है -

गोरी रै म्हारी घर-घर हँडणा छोड्डो तम मंड कै कातणा कातो।
पिया हो मैं क्यूकर कातूँगी कातणा थारे घर म्हं चरखा कोन्यां
तड़कै बम्बी जायांगे, चरखा-पूणी ल्यावांगे।

गाँधी जी ने अंग्रेज सरकार के प्रति सब मोर्चों पर असहयोग करने के लिए आंदोलन में भाग लेने का आह्वान किया था, फिर भी अनेक लोग अपने मुनाफे के काम में ही डटे रहे, तो तरह-तरह के गानों से उनको उत्साहित करने का प्रयास किया जाने लगा -

देसवा में गांधी जी त अंधिया बहवले बाड़ेऽ, मानु मानु उनुकर कहल रे ओकिलवा।
जाई कचहरिया ते झूठ साँच बोलअ तारेऽ, ठगअ तारेअ गउवा के लोग रे ओकिलवा।
लाज नाहीं लागे तोरा झगड़ा लगावला में, भाई भाई आपसे में लड़वले रे ओकिलवा।

गाँधी जी ने स्वतंत्रता संग्राम के लिए बिगुल बजाया, तो उस समय महिलाएँ भी 'मैं भी तेरे साथ चलूँगी गांधी के जलसे में' के लोकगीत के साथ चलने को आतुर हो उठीं। यही नहीं, 'ओ बालम मन्नै ल्या दे चुनरिया, तीन रंग की मनै ल्या दे चुनरिया'; अर्थात् तिरंगे के तीन रंगों वाली चुनरी मँगाने को कहने लगी। उस समय भोजपुरी क्षेत्र में भी इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था -

जब जब बापू कइलन पुकार, रन में बाजल बिगुल तोहार,
सिर पर बाँध बाँध कफन आपन, हम छोड़ि दउरलीं घर दुलार,
रन में रहनीं अगली कतार।

सिपाही विद्रोह के समय मेरठ के बाजार में लोगों ने बहुमूल्य सामान लूटा था। दिल्ली से बहादुर शाह के निवार्सन के पश्चात् उनकी बेगमों के विलाप से पता चलता है कि उनकी क्या दुर्दशा थी -

गलियन गलियन रैयत रोवै, इटियन बनिया बजाज रे।
महल में बैठी बेगम रोवै, डेहरी पर खवास रे।
मोती महल की बैठी छूटीं, छूटी है मीना बाजार रे।
बाग जमनिया की सैरें छूटी, छूटे मुलुक हमार रे।

बक्सर और आरा जिले में बड़ा घमासान हुआ था, जो बक्सर की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध है। 1857 ई. में शाहाबाद जिले के जगदीशपुर निवासी कुँवर सिंह ने वीरता, साहस और बलिदान का जो उदाहरण पेश किया, वह इतिहास की अमर कहानी है -

सन् सत्तावन के बाति याद, सुनि कुँवर सिंह के सिंहनाद।
सब भाग चलल वैरी समूह, छा गइल उहाँ घर घर बिसाद।

स्वतंत्रता संग्राम में अनेक स्वातंत्र्य-प्रेमियों ने अनथक परिश्रम किया, अपनी कुर्बानी दी, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस उसी में से एक अग्रगण्य नाम है -'भारतमाता तेरे फिकर में, बाबू चन्दरबोस गया/बेरा नापटे कित फिरै भरमता, होकर तेरा पूत गया/सबसे कहा वीर ने आपस में तुम मेल करो।' भारतीय साहित्य के साथ भारतीय भाषाओं और उनकी बोलियों में ऐसे लोक-स्वर सामने आए, जिन्हें अंग्रेज सरकार जब्त करती गई, प्रतिबंधित करती गई। मनोरंजन प्रसाद सिंहा की 'फिरंगिया' कविता में भारतभूमि का चित्रण बेजोड़ है -

सुंदर सुघर भूमि भारत के रहे रामा,
आज उहे भइल मसान रे फिरंगिया।
अन्न जन बल बुद्धि सब नाश भइले,
कवनों के ना रहल निशान रे फिरंगिया।

इसी सिलसिले में रघुवीर शरण की कविता 'बटोहिया' में भारत का रूप दर्शन और भारतीयता की अद्भुत आवाज सुनाई देती है -

सुंदर सुभूमि भइया भारत के देसवा से।
मोरे प्राण बसे हिम खोह रे बटोहिया।।
एक द्वार घेरे रामा हिम कोतवलवा से।
तीन द्वार सिंधु घराई रे बटोहिया।।

इसी में भारत का स्वर्णिम अतीत का चित्र भी है-

नानक, कबीरदास, शंकर, श्रीराम, कृष्ण।
अलख के गतिया बतावे रे बटोहिया।।
बुद्धदेव, पृथु, वीर अर्जुन, शिवाजी के।
फिरि फिरि हिय सुधि आवे रे बटोहिया।
अपर प्रदेश देश सुभग सुघर वेश।
मोर हिन्द जग के निचोड़ रे बटोहिया।।
सुंदर सुभूमि भैया भारत के भूमि जेहि।
जन 'रघुवीर' सिर नावे रे बटोहिया।।

स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में भारत भर में अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष हुआ, जिसमें एक ओर राष्ट्रीयता का विकसित होता रूप था, तो दूसरी ओर स्थाानीयता-क्षेत्रीयता की अपनी मांगें भी थीं। इस संदर्भ में गोविन्द चातक लिखते हैं कि ''स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में गाँधी, नेहरू व नेता जी के गीतों की धूम रही। 'भरती होई जाण गांधी की पलटन मा' तथा 'महात्मा गांधी बड़ो भागी छ' से पहाड़ गूंज उठे। नेहरू जन जन की आस थे। 'काटी जालो घास नेरू....तेराई सास झम।' और नेता जी राष्ट्र के जीवंत त्याग के प्रतिरूप थे : 'जैहिन्द सुफल फलीगे नेता जी जैहिन्द तुमारो खून'।'' जब स्वराज मिला तो हर्ष का ठिकाना नहीं रहा -'आजु भइल भारत में सुराज/आपन बोली आपन बिचार/आपन घर में अपना बा राज।' यह अलग बात है कि आजादी मिलने पर भी आजादी के सपने साकार नहीं हुए, उल्टे गाँधी जी की हत्या हो गई तो स्वाभाविक था कि इसका रूदन-गान हरियाणवी लोकगीतों में भी सुनाई देता -

ऐ नत्थू राम तूणे जुलम करा, कैसे मारा गांधी,
शान्ति देवी राज करे थी, आगे लगा दी बांद्दी।

जब आजादी के सपने साकार नहीं हुए, तब लोकस्वर फूट पड़ा - 'गराबू की दुन्यां मा धनवानू को राज/हम भूका मरया स्यि वण्या सिरताज' के रूप में लोगों का मोहभंग हुआ। लोकगीतों में भयावह परिस्थितियों और परिणामों के प्रति भीषण रोष मिलता है। अनेक गीतों में महँगाई की चर्चा मिलती है। आजादी के बाद जब पहली बार बाजरा बिका तो उसके गीत चल पड़े- 'बाजरो दनादन, पाड़ मा बाजरो बिको बासमती का भाऊ' तथा यह भी कि 'बाजरा की रोटी नौना नी खाँदा, लगौ बै डिस्याणा टुप सेई जाँदा' यानी बाजरे की रोटी बच्चे नहीं खाते। इस प्रकार ''राष्ट्रीय जीवन में हर्ष और विषाद, आशा और निराशा दोनों की वाणी मिलती है। फिर तो गरीबी और दरिद्रता का चित्रण भी लोकगीतों में खूब होने लगा -

चिट्ठी मेरी लिख देणी कब आला डेरा वो;
नौनी नौना भूखल भर्‌या अब का अन्न काल मा!
तुमन नी देख्या स्वामी बेहाल मेरा वो
मो अभागी रौंदी रयूं सारा साल मा!

उनको पत्र लिखकर पूछो कि वे कब घर आएँगे, यहाँ अकाल में बाल-बच्चे भूखे मरे जा रहे हैं। स्वामी तुमने मेरे बुरे हाल नहीं देखे, मैं सारी रात रोती रही हूँ।'' राष्ट्रीय-क्रांतिकारी चेतना को विस्तृत करने की दृष्टि से लोकस्वर के द्वारा गुरुतर कार्य हुआ है और सांस्कृतिक प्रवाह को अक्षुण्ण रखने की दिशा में आज भी इसकी महती भूमिका है।